कहाँ मेरा इलाहाबाद

आलोक राय

DHARMASHALA :

1. *Seth Sevaram Channu Lal Sidhiyana*, Mirzapur, Katju Road
2. *Jain Dharmashala*, Zero Road.
3. *Seth Kanji Khetani*, Rameshwar Oil Mills, back of Jamuna bank road
4. *Hindu*, Khoya Mandi, Chowk
5. *Sri Gokuldas Tejwal*, Gaughat,
6. *Sri Marwari*, 30 Sammelan Marg
7. *Lohna*, Yamuna bank Road
8. *Chini*, Zero Road, Swaroop Rani Park
9. *Smt. Chameli Devi*, Hewett Road
10. *Sri Purushottam Das Agarwal*, Zero Road
11. *Sindhi*, Daraganj
12. *Paliwal*, Daraganj
13. *Bhargava*, Daraganj
14. *Vanshidhar Gopal das Rastogi*, Daraganj
15. *Rastogi*, Daraganj
16. *Sahu*, Daraganj
17. *Agarwala*, Daraganj

OTHER ACCOMMODATION :

1. *Y.M.C.A.* 13 Sarojini Naidu Road
2. *Y.W.C.A.*, Kamla Nehru Road
3. *Circuit House*, Hasting Road
4. *P.W.D*, Inspection Bungalow
5. *Jal Nigam Rest House*, Sangam Area
6. *Railway Retiring Rooms.*

BAR AND RESTAURANT :

1. *U.P.S.T.D.C.* (Tourist Bungalow) Bar and Restaurant, Civil Lines.
2. *El Chico Restaurant*, Civil Lines
3. *Kwality Restaurant*, Civil Lines
4. *Tandoor Restaurant*, Civil Lines
5. *Jade Garden*, Tepso Hotel, Civil Lines
6. *Purohit* (Veg.) Leader Road.
7. *Tripti Restaurant*, Katju Road.

GENERAL INFORMATION :

Area	3 Sq. km.
Population	1 million (Approx.)
Height	322 ft. above sea level
Climate	Tropical
Annual Rain fall	40" (1000 mm)
Season	October to April
Language	Hindi, Urdu and English.

IMPORTANT ADDRESSES :

1. *Regional Tourist Office*, 35, Mahatma Gandhi Marg, Civil Lines (tel 53883)
2. *U. P. Automobile Association*, 32A Mahatma Gandhi Marg, Civil Lines
3. *Indian Airlines*, Tashkant Road (Tel. 2832
4. *Vayudoot Airlines*, Yatric Hotel, Patel Road, (Tel. 55707) Telex : 286
5. *Registration Office*, 2-A, Mission Road, Katra
6. *Regional State Archives*, Near Government Inter College Lowther Road.
7. *Wild Life Warden*, (Allahabad & Mirzapur) Vindhya Area 174 C/2 Mehdau
8. *North Central Zone Cultural Centre*, CSP Singh Marg. Ph. : 3207

TRAVEL AND COMMUNICATION :

AIR : bambrauli airport—10 Km. Indian Airlines and Vayudoot flights for Delhi, L

बरसों पहले एक ऐसा अनुभव हुआ जिसने हमेशा के लिए हमारा संबंध अपने शहर इलाहाबाद से बदल दिया या स्पष्ट भर कर दिया, कह नहीं सकता।

पुराने लोगों से बातें करें तो वो अकसर गद्गद् कण्ठ से, नम आँखें लिए, इलाहाबाद की सिविल लाइंस की बात करते हैं। सिविल लाइंस, जिसे सब बस 'सिविल्लाइन' कहते हैं, कल्पना में इस बाज़ार का दर्जा कुछ लखनऊ के हज़रतगंज का-सा है। दोनों एक गुज़रे हुए समय और समाज और तौर-तरीक़े का प्रतीक बन गये हैं। ये अलग बात है कि सिविल लाइंस जब वास्तव में सिविल लाइंस थी, तब वहाँ गिने-चुने हिन्दुस्तानियों का ही प्रवेश था। बाक़ी कालू, हम-आप, आ तो सकते थे, लेकिन बतौर नौकर, हम्माल, मोची।

सन् सत्तावन की फ़तह के बाद जब अंग्रेज़ बहादुर ने डरे-सहमे हिन्दुस्तानियों पर अपनी हुकूमत क़ायदे से जमाई तो उसका उत्तर भारतीय केन्द्र इलाहाबाद था। उस ज़माने की बड़ी-बड़ी सरकारी इमारतें आज भी खड़ी हैं: मोटी-मोटी

दीवारों पर काई जमी है, एक अजीब उजड़ी उदासी हमेशा तारी रहती है उन पर — इसके बावजूद कि हताश, हड़बड़ाते लोगों की भीड़ कहाँ नहीं है? लेकिन राजधानी तो कबकी कहीं ओर चली गयी। अब तो इन दफ़्तरों में बस छोटे-छोटे लोगों को छोटे-छोटे कष्ट दिए जाते हैं।

अंग्रेज़ बहादुर का यूँ यहाँ पैर जमाने का एक असर ये हुआ कि अन्य सारे यू.पी. के शहरों से ज़्यादा गहरी साहबी संस्कृति की छाप यहाँ पड़ी। लखनऊ का अंदाज़ नवाबी है, भले ही नवाब और उनकी रियाया कब के लुट-पिट चुके हों। बनारस का अपना रंग — जिसके लिए 'बनारसी' के अलावा कोई भी शब्द अपर्याप्त लगता है — इतना गहरा है कि उस पर तो किसी और की छाप पड़ ही नहीं सकती। काली कमली पर काल की परतें तो ज़रूर पड़ती हैं। लेकिन रंग कुछ वैसा ही बना रहता है।

लेकिन इलाहाबाद, और ख़ासतौर से सिविल लाइंस वाला इलाहाबाद — ये तो अंग्रेज़ बहादुर का शहर है। और भी हैं इलाहाबादः गंगा के तट पर, संगम के आस-पास, दारागंज के इर्द-गिर्द, बाँध के किनारे, पंडों का इलाहाबाद है — शाश्वत न सही लेकिन आज की ताज़ातरीन संस्कृति में, जहाँ पिछले साल का अवैध मंदिर रातोंरात 'प्राचीन' हो जाता है, काफ़ी पुराना। अनगिनत लोगों की अस्थियाँ सिरायी गयी हैं यहाँ, सोच के जी सिहर उठता है।

हाँ, ये स्पष्ट नहीं है कि दूसरे इलाहाबाद के बनने से पहले, पहला, यानी पंडों का इलाहाबाद, संगम का इलाहाबद कैसा रहा होगा — क्योंकि बाँध के बग़ैर तो ये सारा क्षेत्र एक कछार बस है, गंगा और जमुना के बीच। जिसे अकबर का बाँध कहते हैं, उसी ने दूसरे इलाहाबाद शहर को संभव बनाया — मुख्यतः एक बड़ी मंडी, जहाँ से मध्यदेश का ग़ल्ला और शायद अफ़ीम, गंगा पे चलने वाले जहाज़ों से कलकत्ते पहुँचता था।

रेलगाड़ी के आने के बाद इस व्यापारी इलाहाबाद का अस्तित्व घटता गया और अंग्रेज़ बहादुर ने नक़्शे पे सीधी-सीधी लाइनें खींच कर एक तीसरे इलाहाबाद को साकार किया। इस इलाहाबाद का हिन्दुस्तान की गली-कूचों वाली सभ्यता से बहुत कम संबंध था। चौड़ी, सीधी सड़कें, बड़े-बड़े हाते, घने पेड़ों से घिरे, गहरे बरामदों वाले बड़े-बड़े बंगले। ये बंगले आज भी अपने आप को घिरा पाते हैं, लेकिन पेड़ों से नहीं, गँजे हुए फ़्लैट्स की बहुमंज़िला इमारतों से — ठिठके-से, कुछ डरे-सहमे, कुछ नई चमचमाती समृद्धि से ललचाए हुए।

इस तीसरे इलाहाबाद का एक अभिन्न अंग वो बाग़ है जिसके नाम तो कई-कई बार बदले, लेकिन जनता जिसे आज भी कम्पनी बाग़ के नाम से जानती है। आज़ादी के बाद तक इसके बीचोंबीच बैन्ड-स्टैन्ड में शाम के वक़्त वर्दीधारी गोरखे सैनिक संगीत बजाया करते थे — और सम्भ्रांत नागरिक अपने बच्चों को सम्भालते-घसीटते आज़ादी और आभिजात्य की हवा खाते थे। कई साल तक तो मोटी रानी विक्टोरिया अपनी संगमरमर की छतरी के नीचे से इस सबका नज़ारा लेती थीं। फिर उस आज़ादी की भावना ने, जो इस शहर में पनपी और जमी थी, एक दिन मलका विक्टोरिया की नाक तोड़ डाली। सम्भ्रांत नागरिक कहीं और चले गए और आज वहाँ गुंडे और शोहदे एक-दूसरे से आमदोरफ़्त बढ़ाते हैं। हाँ, इस बाग़ के ही एक कोने में चन्द्रशेखर आज़ाद को मारा गया था — लेकिन उनका पुतला, अनदेखा ही सही, आज भी अपनी मूँछों पर ताव दे रहा है। वर्तमान भोंडेपन की बाढ़ में डूबते हुए अकसर ये ख़याल आता है कि चौथा, आज़ादी के बाद का, इलाहाबाद कहाँ है — लेकिन 'आज़ादी के बाद' होता क्या है?

नॉस्टेल्जिया के लिए लफ़्ज़ हमारी ज़बान में भले न हों लेकिन बीमारी ख़ूब पायी जाती है। अकसर ही दिल्ली — परदेस में फलते-फूलते हम इलाहाबादी किसी-न-किसी बहाने से इकट्ठा होते हैं। अजनबियों की भीड़ वाले महानगर में एक अजीब तरह का आश्वासन मिलता है — जिधर देखो बस हम ही हम तो हैं! वैसे सुना है कि बिजनौर में रहने वाले भी कुछ ऐसा ही सोचते हैं! कहाँ मेरा इलाहाबाद...

दरअसल बात ऐसी है कि नॉस्टेल्जिया की भावना के पल्लवित-पुष्पित होने के लिए ख़ास उस दूरी की ज़रूरत होती है — भौगोलिक दूरी, काल की दूरी — जिस बिछोह में ये भावना मुखर हो उठती है। और जो भी हो, सौभाग्य या दुर्भाग्य, शहर से मेरा रिश्ता आज भी बरक़रार है। मैं उस इलाहाबाद से परिचित ज़रूर हूँ जो परदेस की इन मण्डलियों में, बातों ही बातों में झट रच लिया जाता है, जीवन्त हो उठता है। अधेड़ लोग अपने

मियाँ-बीवी की खीझ को अनदेखा करते हुए अपने-अपने अतीत के गलियारों में भटक लेते हैं, अपनी टच-रीटच करी हुई जवानी से, कुछ देर के लिए ही सही, दो-चार हो लेते हैं। एक अजीब सोहबत है — सब साथ भी हैं, अकेले भी — अकेले हैं क्योंकि साथ में हैं, साथ आए हैं कि अकेले हो सकें।

लेकिन मैं उस रूमानी इलाहाबाद का बाशिंदा नहीं हूँ। कभी सोचता हूँ अगर माँ-बाप ने इलाहाबाद छोड़ और कहीं घर बसाया होता तो? आख़िर दोनों इलाहाबाद के तो थे नहीं। पिता उमर भर बनारस के लिए हुड़कते रहे। कोई मिल भर जाए जो बनारसी बोले, फिर न तो समय की फ़िकर रहती न सरोकार का आग्रह। अएली-गएली के स्वर ही काफ़ी थे घंटों दिल बहलाने के लिए, वो दिल जो अवधी के रूखे-सूखे अंदाज़ के बीच हमेशा कुछ अजनबी, कुछ अनमना-सा बना रहा।

माँ जबलपुर की, दिल में अल्हड़, उबलती-इठलाती नर्मदा की याद लिए, अपने देस के घने जंगलों की याद लिए — जिनमें कभी हमने भी शेर देखा था। सो बसीं इलाहाबाद में, जहाँ सदियों तक कोई जंगल नहीं, सिर्फ़ गंगा-जमुना की शांत धारा से सिंचित विशाल मैदान, जहाँ लहलहाते खेतों में भूख उगा करती है।

याद है पहली बार जब मुझे ये एहसास हुआ था कि निकटतम समुद्र की दूरी कोई 600 मील है, और इलाहाबाद की समुद्रतल से ऊँचाई कुल 300 फुट! इसके कई दूरगामी असर हुए। एक तो, ये कि मेरे मन में पहाड़ के लिए बहुत स्नेह, बहुत प्यार हो गया। पहाड़ क्यों पहाड़ियाँ ही सही, छोटे-मोटे टीले देख कर जी भर आता है — क्योंकि इलाहाबाद तो साल के कई महीनों महज़ एक तवा-सा लगता है, गंगा-जमुना का मैदानी तवा। लेकिन फिर ये भी लगता है कि शायद ये सपाटता एक तरह की दृष्टि भी देती है, संभव बनाती है: जो है सो स्पष्ट है और यहाँ की निर्मम रोशनी में छिपाये नहीं छिपता। कहीं पहाड़ियों का उतार-चढ़ाव नहीं, न रहस्यों को छुपाने-सुझाने वाली छाया। भरोसा बस कि हमारे पैर ठोस ज़मीन पर जमे हैं — वो ज़मीन जिसने कितने ही वंशों-राजवंशों, समाजों और संस्कृतियों को आते-जाते देखा है। सभी ने अपने आप को शाश्वत जताया, कालजयी बताया। लेकिन शाश्वत तो सिर्फ़ ज़मीन है, और उस पर खड़ा मेहनतकश इन्सान।
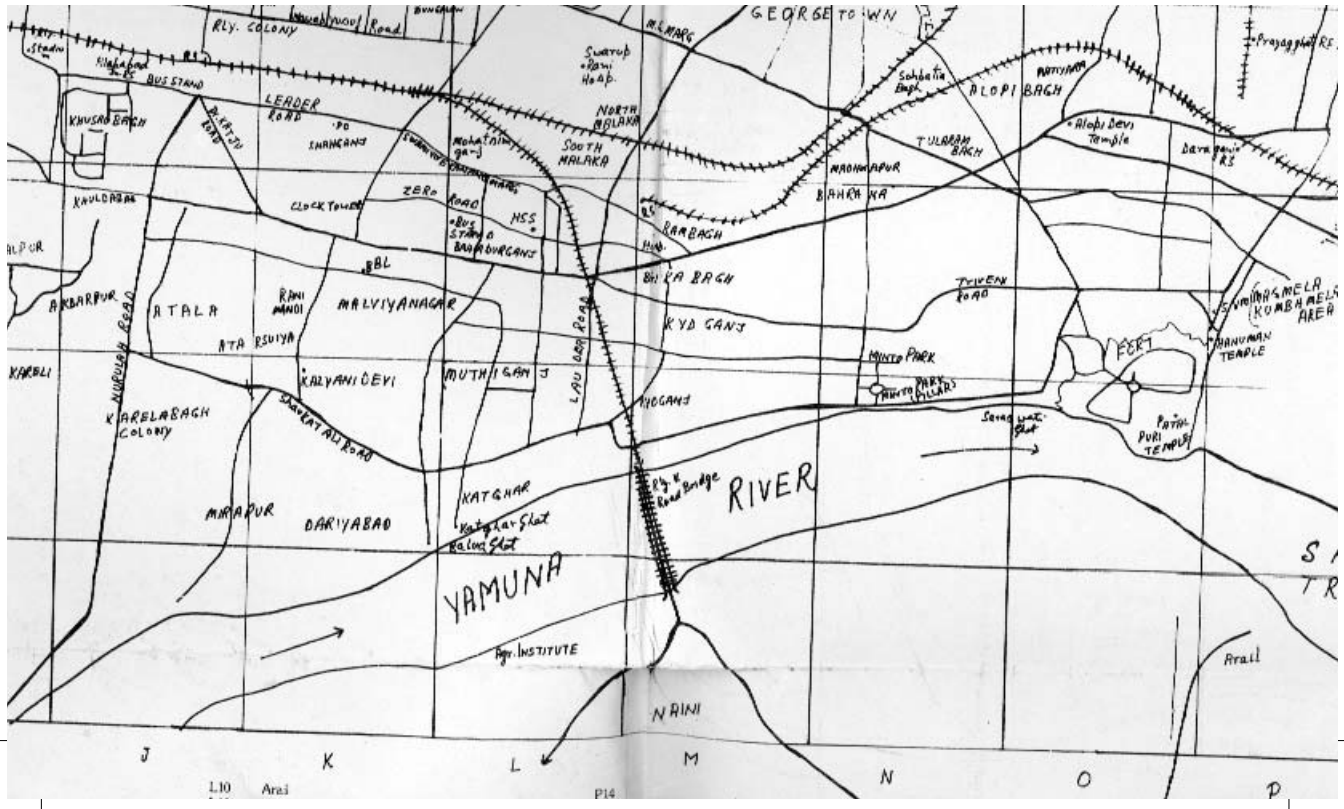
इसीलिए जब बरसों पहले एक औरत ने ज़ोर से, हिक़ारत-भरे स्वर में कहा था — यई ऐ सिविल्लाइन! इस्से जादा रौनक तो हमारे बिजनौर में है! — तो हम बस क्षण-भर के लिए विचलित हुए। फ़ौरन ख़याल आया — ज़रूर होगी!